जन्म शताब्दी पुस्तकमाला- २४

ध्यान का दार्शनिक पक्ष

(प्रवचन)

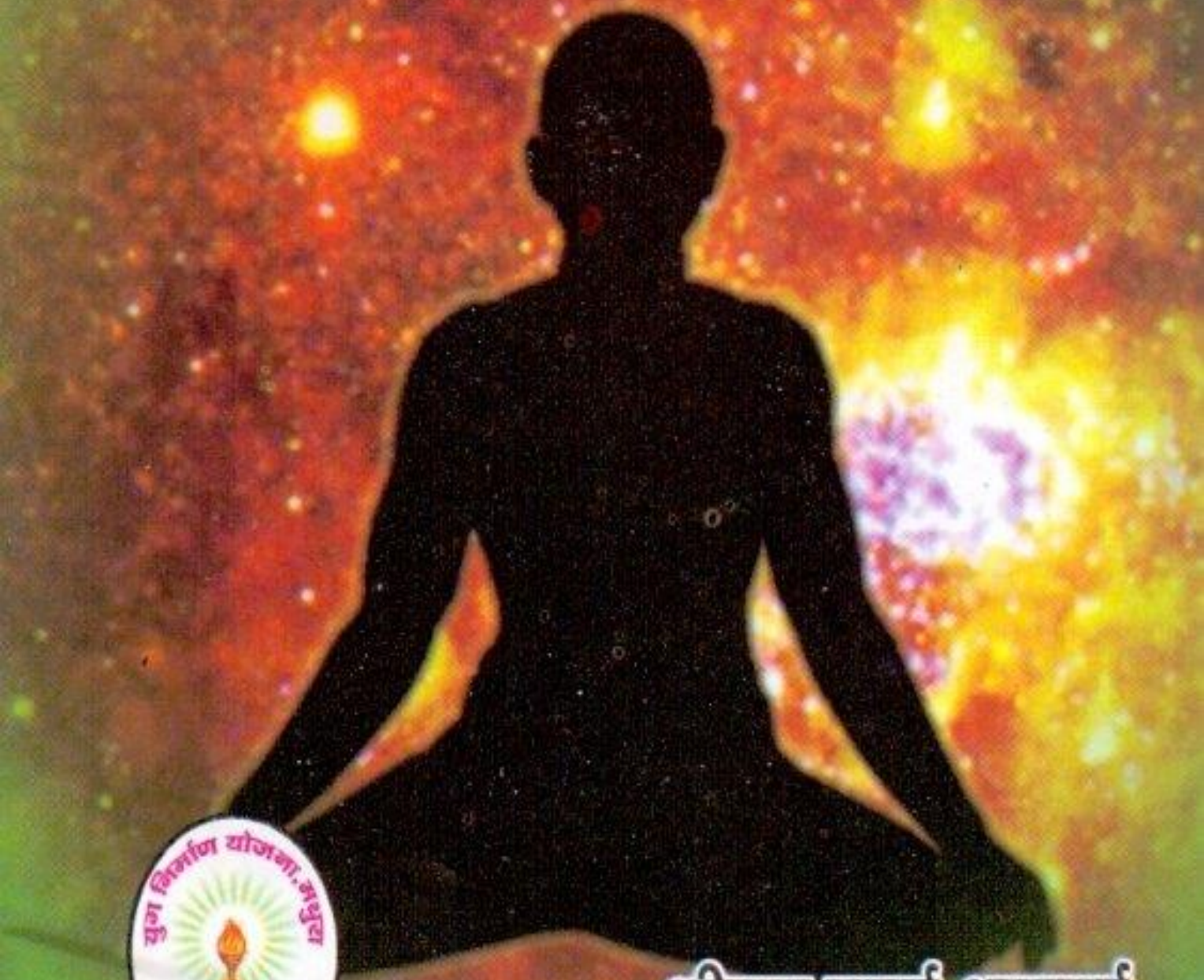

- श्रीराम शर्मा आचार्य

ध्यान का दार्शनिक पक्ष

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ बोलें—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

साधना स्वर्ण जयंती वर्ष में हम आपको गायत्री उपासना के साथ-साथ विशेष रूप से जो शिक्षण देते हैं, वह ध्यान का शिक्षण है। उपासनाएँ दो हैं—नाम और रूप की उपासनाएँ। नाम और रूप के बिना उपासना हो नहीं सकती। यह दो यूनिवर्सल उपासनाएँ हैं। किसी भी मजहब में चले जाइए व्यक्ति नाम जरूर ले रहा होगा। मुसलमान तसबीह पर नाम ले रहा होगा। ईसाई पादरियों को आप माला जपते हुए देखेंगे। आर्यसमाजी प्रकाश का ध्यान कर रहे होंगे। अन्य अमुक तरह का ध्यान कर रहे होंगे। नादयोग वाले कान में आने वाली आवाजों का ध्यान कर रहे होंगे। बहरहाल ध्यान जरूर करना पड़ता है। ध्यान के बिना गति किसी की नहीं है। इसीलिए हमने कहा है कि जप के साथ-साथ आप ध्यान किया

कीजिए। स्थूल ध्यान मूर्तिपूजा के माध्यम से होता है, तसवीरों के माध्यम से होता है, क्योंकि मनुष्य का मानसिक विकास इतना नहीं हो पाया है कि वह बिना किसी फोटोग्राफ के, बिना किसी मूर्ति के किसी चीज का ध्यान कर सके, लेकिन जब वह विषय पक्का हो जाता है, तब फिर मूर्ति की कोई खास जरूरत नहीं रह जाती। तब हम अपने भीतर बैठे हुए भगवान का साक्षात्कार कर सकते हैं। उसका ध्यान कर सकते हैं।

ध्यान का क्या मतलब है? ध्यान का मतलब है कि हमारे जीवन के दो पक्ष हैं। एक पक्ष वह है जो बाहर फैला हुआ पड़ा है। हमारे कानों के सूराख बाहर को हैं और हमारी आँखों के सूराख बाहर को हैं। हम बाहर की चीजों को देख सकते हैं और बाहर कौन बैठा हुआ है, कौन जा रहा है, यह भी बता सकते हैं। बाहर की चीजें हमको दिखाई पड़ती हैं, किंतु भीतर की चीजें हमको बिलकुल दिखाई नहीं पड़तीं। तो क्या भीतर कोई चीज नहीं है? बेटे

असल में जो कुछ भी चीज है, वह भीतर ही है बाहर नहीं है बाहर केवल दिखाई पड़ती हैं, पर असल में हर चीज भीतर है। जिंदगी कहाँ है? जिंदगी बाहर नहीं हमारे भीतर है और बुद्धि जिसकी वजह से हम रुपया कमाते हैं, सम्मान कमाते हैं, वह बाहर नहीं हमारे भीतर है जिसकी वजह से हम हर चीज कमा सकते हैं। भीतर हमें दिखाई नहीं पड़ता और हम कहते हैं कि हे भगवान! यह आपने क्या मखौल कर दिया मनुष्य के साथ कि बाहर की चीजों की जानकारी दे दी, पर भीतर की चीजों की नहीं दी। भीतर जो चीजें, संपत्तियाँ, विभूतियाँ, देवत्व और महानता दबी हुई पड़ी हैं, वह हमको दिखाई नहीं पड़तीं। हमको अपना बेटा दिखाई पड़ता है, संपत्ति दिखाई पड़ती है, यह और वह दिखाई पड़ता है और न जाने क्या-क्या दिखाई पड़ता है, पर हमको अपना भविष्य नहीं दिखाई पड़ता, आत्मा दिखाई नहीं पड़ती, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। यहाँ तक कि हमारे भीतर वाले कलपुर्जे तक दिखाई

नहीं पड़ते। आँखें तक दिखाई नहीं पड़तीं। भीतर की तो बात कौन कहे बाहर की भी दिखाई नहीं पड़ती। अच्छा बताइए आप की नाक कैसी है? भौंहें कैसी हैं? पलकें कैसी हैं? जब आपको बाहर की चीजें ही नहीं दिखतीं, केवल इधर-उधर की चीजें ही दिखाई देती हैं, तो फिर भीतर की कैसे दिखेंगी? इसीलिए गरेवान में मुँह डाल करके जब हम भीतर तलाश करते हैं तो उसको ध्यान कहते हैं। अपने भीतर झाँकने का नाम ही ध्यान है।

ध्यान किसका किया जाता है? स्वयं का या भगवान का? बेटे स्वयं तो क्या और भगवान तो क्या दोनों एक ही हैं। स्वयं का विकसित रूप ही भगवान है। हमारा विकसित रूप जो है—**'शिवोऽहं' 'सच्चिदानंदोऽहं' 'तत्त्वमसि' 'अयमात्माब्रह्म' 'प्रज्ञानंब्रह्म'** है। वेदांत के यह सारे के सारे महावाक्य यह बताते हैं कि हमारा परिष्कृत रूप भगवान है। हमारा भगवान हमारा परिष्कृत रूप ही है। डाइमंड क्या है? डाइमंड और कोयले में कोई खास फरक

नहीं है। एकाध इसके एलीमेंट्स और एकाध इसके भीतर के जो जर्रे हैं, उनमें फरक पड़ता है, अन्यथा हीरा और कोयला एक ही हैं। आत्मा और परमात्मा एक है। यह थोड़ा सा सीमाबद्ध है तो वह असीम है। यह अणु है और वह विभु है। यह मायाग्रस्त है तो वह मुक्त है। बस इतना ही फरक है। अगर हम अपने आप को साफ कर लें तो हम उसको प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए हम प्रकाश का ध्यान करते हैं, भीतर वाले का ध्यान करते हैं। अपने लक्ष्य का ध्यान करते हैं, जीवन का ध्यान करते हैं तो गुरुजी आपने इसीलिए सूरज का ध्यान बता दिया है ? हाँ बेटे, वह तो हमने प्रतीक बता दिया है। उसकी चमक देखकर अगर आप यह अंदाजा लगाते हों कि हमारे ध्यान में चमक आ जाती है या नहीं आती अथवा आपके ध्यान में गायत्री माता आ जाती हैं या नहीं आती हैं, तो उससे बनता-बिगड़ता नहीं है। उससे केवल यह बात साबित होती है कि आपके दिमाग की परिपक्व अवस्था आई कि नहीं। प्रकाश से मेरा मतलब वह नहीं है जो आप

समझते हैं। प्रकाश को अध्यात्म में जिस अर्थ में लिया गया है, उस अर्थ से मेरा मतलब है। प्रकाश 'डिवाइन लाइट' लेटेंट लाइट या ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह चमक के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है। चमक का अर्थ ज्ञान है। जिस प्रकाश के लिए हमने कहा है, वह है जिसके लिए भगवान से हमने प्रार्थना की है **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'**। हे भगवान! हमको अंधकार की ओर नहीं प्रकाश की ओर ले चलिए। अध्यात्म में प्रकाश शब्द कहीं भी प्रयुक्त हुआ है, वहाँ ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

ध्यान के लिए जो हमने यह बताया कि आप प्रकाश का ध्यान किया कीजिए, तो कहाँ-कहाँ प्रकाश का ध्यान किया करें? अभी स्वर्ण जयंती साधना वर्ष में हमने आपको तीन जगह ध्यान करने के लिए कहा है। एक आप मस्तिष्क में ध्यान किया कीजिए। दूसरा अंतरात्मा में हृदय स्थान पर और तीसरा नाभि स्थान पर ध्यान किया कीजिए। हमारे तीन शरीर हैं और तीनों शरीरों के ये तीन केंद्र हैं। इन तीनों के

भीतर प्रकाश चमकना चाहिए। प्रकाश हमारे तीनों शरीरों के भीतर प्रविष्ट होना चाहिए। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि प्रकाश जब हमारी नसों में आए, नाड़ियों में आए, शरीर में आए तो नाभि में होकर आए। नाभि में से होकर इसलिए कि माता और बच्चे का जो संबंध-सूत्र है, वह नाभि से जुड़ा होता है। इसलिए स्थूलशरीर का केंद्र नाभि को माना गया है। जिस प्रकार माता के शरीर में से उसका रक्त नाभि से होकर हमारे शरीर में आता था और दोनों का संबंध जुड़ा हुआ था, उसी प्रकार भगवान का प्रकाश नाभि में से होकर हमारे शरीर के भीतर आता है। जब वह प्रकाश आएगा, तब आपकी हड्डियाँ चमकेंगी, रक्त चमकेगा, मांस चमकेगा। चमकने से मेरा मकसद यह है कि तब आपके भीतर कर्मनिष्ठा, स्फूर्ति, साहसिकता, श्रम के प्रति प्यार, कर्मों के प्रति प्यार, कर्मयोग के प्रति प्यार, कर्त्तव्य-परायणता के प्रति प्यार उभरेगा। यह कर्मयोग है। कर्मयोग शरीर का योग है। प्रकाश का ध्यान करने

वाला कभी ठाली बैठ नहीं सकता। वह सतत सत्कर्मरत ही रहेगा।

तीन योग हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। प्रकाश के माध्यम से इन तीनों योगों को हृदयंगम करने के लिए मैंने आपको कहा है। भगवान का प्रकाश जब कभी शरीर में आएगा तो कर्मयोग के रूप में आएगा और आदमी कर्त्तव्यनिष्ठ होता हुआ दिखाई पड़ेगा। उसके लिए 'वर्क इज वरशिप' होगा। पूजा कर्म, श्रेष्ठ कर्म, आदर्श कर्म, लोकोपयोगी कर्म, मर्यादाओं से बँधे हुए कर्म सभी कर्मयोग के अंतर्गत आते हैं। जो हमें सिखाते हैं कि जब प्रकाश हमारे शरीर में आता है तो हमारे शरीर की प्रत्येक क्रिया को कर्मनिष्ठ होना चाहिए। परिश्रमी होना चाहिए। यह बताता है कि आदमी को जो प्रकाश का ध्यान करता है, उसे हरामखोर और आलसी नहीं होना चाहिए। चोर और हरामखोर मेरी दृष्टि से दोनों बराबर हैं। महाराज जी हमारा बेटा बड़ा हो गया है और खूब कमाता-खाता है और हम तो अपनी मौज करते हैं। नहीं बेटे,

कामचोर और चोर में तो कामचोर ही बड़ा होता है। मनुष्य के लिए यह सबसे बड़ी गाली है। कामचोर सबसे खराब आदमी है। नहीं गुरुजी हमको तो पेंशन मिलती है और हम मौज करते हैं। नहीं बेटे, हम तुझे मौज नहीं करने देंगे। जब तक जिंदा है, तब तक शरीर से तुझे कर्म करना पड़ेगा। अपने लिए रोटी खाने, पेट भरने को है, दूसरों के लिए तो नहीं है। उसके लिए कर। गुरुजी! हमारे बेटे तो पढ़ गए और हम अब निश्चिंत हो गए। तेरे ही तो पढ़ गए समाज के बेटे तो नहीं पढ़े। चल रात को नाइट स्कूल चलाया कर और दूसरों के बच्चों को पढ़ाया कर।

इसलिए मित्रो, क्या करना पड़ेगा कि जब वह प्रकाश, जो मैंने जप के साथ-साथ करने के लिए बताया है, अगर वह आपके भीतर नसों में स्फूर्ति के रूप में आए तो जब तक आप जिंदा हैं, तब तक हम काम करेंगे, कर्मयोगी बनेंगे, मेहनत करेंगे, मशक्कत करेंगे, श्रेष्ठ काम करेंगे, कर्त्तव्यों का पालन करेंगे। जो हमारे लिए, हमारे समाज के लिए, देश के लिए,

धर्म के लिए सबके लिए कर्त्तव्यों का बंधन बँधा हुआ है, इसका हम पालन करेंगे। अगर इस तरह की स्फूर्ति और नाड़ी अभ्यास बन जाए तो मैं समझूँगा कि आप कर्मयोगी हैं और आपने उस प्रकाश के ध्यान को जो मैंने बताया था उसे सीख लिया और उसका मकसद समझ गए।

दूसरा वाला प्रकाश का ध्यान करने के लिए जो मैंने बताया था और यह कहा था कि आप अपने मस्तिष्क में प्रकाश का ध्यान किया कीजिए। आपके मस्तिष्क में—मन में जब प्रकाश आए, तब आपको ज्ञानयोगी होना चाहिए। कर्मयोगी शरीर से, ज्ञानयोगी मस्तिष्क से। आपके मस्तिष्क के भीतर जो भी विचार आएँ निषेधात्मक नहीं, विधेयात्मक विचार आने चाहिए। अभी तो आप लोगों के मस्तिष्क में विचारों की कितनी भीड़, कितने मक्खी-मच्छर, कितनी वे चीजें जो आपके किसी काम की नहीं हैं, कितने विचार, कितनी कल्पनाएँ आती रहती हैं। उनका यदि आप विश्लेषण करें तो देखेंगे कि मस्तिष्क में जाने

कितने मक्खी-मच्छरों जैसे विचार भरे पड़े हैं। अभी उनमें से एक तो गुस्से का भरा था, एक कामवासना का विचार करता रहा, एक सिनेमा का विचार करता रहा। एक यह विचार करता रहा कि मैंने लॉटरी के तीन टिकट खरीदे हैं, उसमें से तीन-तीन लाख रुपए तो मिल ही जाएँगे। उन रुपयों से क्या-क्या करूँगा? अमुक काम करूँगा, अमुक बच्चे को, अमुक को दूँगा आदि बेसिर-पैर की सारी की सारी बातें सारे के सारे ताने-बाने बुन रहा है। इससे आपकी सारी शक्तियाँ निरर्थक होती जा रही हैं। यह सब बेकार की कल्पनाएँ हैं जिनके पीछे न कोई तारतम्य है, न वास्तविकता है और न इनसे आपको कुछ लेना-देना है। इस प्रकार की कल्पनाएँ निरर्थक और अनर्थमूलक ही होती हैं। सार्थक कल्पनाएँ अगर आपके मस्तिष्क में आई होतीं, क्रमबद्ध रूप से आपने विचार किया होता तो आपमें से अधिकांश व्यक्ति बाल्टेयर हो गए होते, रवींद्रनाथ टैगोर हो गए होते अगर आपने अपनी कल्पनाओं को क्रमबद्ध बनाया होता, दिशाबद्ध बनाया होता, उत्कृष्ट

और सक्षम बनाया होता। हमारी एक ही विशेषता है कि हम विद्वान हैं। इसलिए विद्वान हैं कि हमने अपने चिंतन की धाराओं को सीमाबद्ध-दिशाबद्ध करके रखा है। हमारा चिंतन अनावश्यक बातों में कभी भी नहीं जाता। जब कभी जाएगा, क्रमबद्ध बातों में जाएगा, दिशाबद्ध बातों में जाएगा, आदर्श बातों में जाएगा और जो संभव है उनमें जाएगा। हमारा मस्तिष्क इतना ताना-बाना बुनता है कि वह एक वास्तविकता और व्यावहारिकता पर टिका रहता है। जो अवास्तविक है, अव्यावहारिक है और जो अनावश्यक है, ऐसे सारे के सारे विचारों को हम बाहर से ही मना कर देते हैं कि—'नो एडमीशन' यहाँ नहीं आ सकते, बाहर जाइए। आपको दाखिला हमारे मस्तिष्क में नहीं मिल सकता।

मित्रो, ज्ञानयोग उस चीज का नाम है, जिसमें कि अपने भीतर चिंतन में जो अवांछनीय तत्त्व घुलते चले जाते हैं, उनको हम हिम्मत के साथ रोकें और जिन चीजों की आवश्यकता है, जो चिंतन हमारे भीतर

आना चाहिए उस चिंतन को बुला करके-निमंत्रित करके अपने भीतर स्थिर करें, तो हमारा मस्तिष्क वह हो सकता है जिसे हम ज्ञान का भंडार कह सकते हैं।

विद्या की दृष्टि से, ज्ञान की दृष्टि से, सुलझाव की दृष्टि से एक से एक बहुमूल्य चीजें इसके भीतर से निकलती हुई चली आ सकती हैं। ज्ञान की गंगा हमारे मस्तिष्क में से वैसी ही बह सकती है जैसे कि शंकर जी के मस्तिष्क में से प्रवाहित होती थी। हमारे मस्तिष्क में संतुलन का चंद्रमा उसी तरीके से टँगा रह सकता है जैसे कि शंकर भगवान के मस्तिष्क पर टँगा हुआ था और हमारा तीसरा नेत्र—विवेक का नेत्र, दूरदर्शिता का नेत्र उसी तरीके से खुल सकता है जैसे कि शंकर भगवान के मस्तिष्क पर खुला हुआ था। मित्रो, यह ज्ञानयोग की साधना है। प्रकाश चमकना चाहिए हमारे ज्ञान को और विचारों को संतुलित और सुव्यवस्थित करने के लिए। अगर आपको ऐसा ज्ञान आए तो मैं समझूँगा कि हमने आपको अनुष्ठान में और साधना स्वर्ण-जयंती वर्ष में सम्मिलित करके जिस

ध्यान की बाबत बताया है उसको आपने जान लिया और उसका व्यावहारिक स्वरूप समझ गए। अगर आप उसका व्यावहारिक रूप नहीं जान पाए और कल्पनालोक में ही उड़ते रहे तो फिर ख्वाब ही देखते रहेंगे, सपने ही देखते रहेंगे। अध्यात्म सपना नहीं व्यावहारिक है। यह हमारे इसी जीवन से ताल्लुक रखता है और आज से ताल्लुक रखता है। ख्वाबों का अध्यात्म नहीं है, सपनों का अध्यात्म नहीं है। ख्वाबों का-सपनों का भगवान नहीं है। भगवान है तो वह जो हमारे आज के अभी के जीवन में आना चाहिए और हमारे व्यक्तित्व के रूप में प्रकट होना चाहिए। हमारे भीतर से प्रकट होना चाहिए।

मित्रो, तीसरा वाला प्रकाश का जो ध्यान हमने बताया है, वह अंत:करण का प्रकाश है, विश्वासों का प्रकाश है, अस्थाओं का, निष्ठाओं का, करुणा का प्रकाश है। जो चारों ओर प्रेम के रूप में प्रकाशित होता है। हम प्रेम के रूप में भक्तियोग कहते हैं। भक्तियोग से क्या मतलब होता है? भक्तियोग का

मतलब है—मोहब्बत। जिस तरह से हम व्यायामशाला में अभ्यास करते हैं और उससे अपने शरीर और कलाइयों को मजबूत बनाते हैं और फिर उसका हर जगह इस्तेमाल करते हैं। सामान उठाने में, कपड़े धोने में, बिस्तर उठाने में करते हैं। हर जगह काम में लाते हैं—किसको? जो व्यायामशाला में ताकत इकट्ठा की थी उसको। इसी तरीके से हम भगवान के साथ मोहब्बत शुरू करते हैं, प्यार शुरू करते हैं, भक्ति करते हैं। भगवान की भक्ति के माध्यम से जो हम ताकत इकट्ठा करते हैं, उस मोहब्बत को हर जगह फैल जाना चाहिए। हम अपने शरीर को मोहब्बत करें ताकि इसको हम अस्त-व्यस्त न होने दें, नष्ट-भ्रष्ट न होने दें। हम अपने शरीर को प्यार करें ताकि वह नीरोग होकर के दीर्घजीवी बन सके। यह हमारा शरीर के प्रति प्यार है। यह भक्ति है शरीर के प्रति भगवान की। मन के प्रति हमारी भक्ति यह है कि हम पागलों के तरीके से अपने मन-मस्तिष्क को खराब न कर दें। यह देवमंदिर है और इतना सुंदर

मंदिर है कि हमारे विचारों की क्षमता सूर्य की क्षमता के बराबर है। इसको हम असंतुलित न होने दें। हम अपने आप से प्यार करें। अपनी जीवात्मा से प्यार करें।

जीवात्मा! जीवात्मा की तो हमने इतनी उपेक्षा की है कि यह बिचारी कराहती रहती है और यह पूछती रहती है कि दोस्त हमारा क्या होना है? बेटे हमारा क्या होना है? यह पूछते-पूछते वह बूढ़ी हो गई। बुढ़िया पूछती रहती है कि बेटा हमारा भी कुछ होना है क्या? और आप कहते रहते हैं कि अरे बुढ़िया तू तो मरने वाली है? तेरा तो यही बद्रीनाथ है तू कहीं मत जा यहीं पड़ी रह। यह बुढ़िया जो है हमारी जीवात्मा है और यह ऐसी ही कसकती-कराहती रहती है। वह अंधी हो गई है, आँखों से दिखाई नहीं पड़ता जीवात्मा को। अपनी जीवात्मा से यदि हमें प्यार रहा होता तो बेटे वह जवान हो गई होती। जीवात्मा से मोहब्बत अगर हमें होती तो वह इतनी प्रचंड और प्रखर हो गई होती कि हम साक्षात भगवान के रूप में काम आते। पर हमारी जीवात्मा मर गई, क्योंकि हम

उससे प्यार नहीं करते। हम किसी से प्यार करते हैं क्या ? नहीं, हम किसी से प्यार नहीं करते। बीबी से प्यार करते हैं ? नहीं। बीबी के लिए तो हम जोंक हैं। खून की प्यासी जोंक जिससे चिपकती है उसका खून पी जाती है। औरत के लिए तो हम जोंक हैं। उसकी जवानी हमने चूस ली। उसको छूँछ बना दिया। पचासों बीमारियों की वह मरीज बन गई है। उसके पास जो कुछ भी था, अपने माँ-बाप के घर से गुलाब का सा शरीर लेकर आई थी हमने उसको वासना की आग में जला दिया। वह जली हुई औरत कराहती, कसकती, सिसकती हुई पड़ी रहती है। जल्लाद छुरे लेकर के जिस तरह से मारता है, हमने भी अपनी औरत में इतने छुरे मारे कि सारा का सारा खून निकाल करके फेंक दिया। बच्चे पर बच्चा पैदा करते रहे और वह चिल्लाती रही कि हमारी हड्डियाँ इस लायक नहीं हैं और हमारे पास मांस उतना नहीं है, कृपा कीजिए अब हम बच्चा पैदा नहीं कर सकते और आप हैं कि बच्चे पैदा करते चले गए। वह हजार बीमारियाँ

लेकर के कभी हकीम जी के यहाँ चक्कर काटती है, कभी आचार्य जी के यहाँ चक्कर काटती है और कहती है कि गुरुजी यह बीमारी है, वह बीमारी है। अगर आपने अपनी स्त्री को प्यार किया होता तो उसको पढ़ाया होता, शिक्षा दी होती, दीक्षा दी होती। उसके स्वास्थ्य की रखवाली की होती और उसको सुयोग्य बनाया होता, उसको विकसित किया होता और श्रेष्ठ बनाया होता, पर अब तो वह किसी काम की नहीं बची।

प्यार है आपके पास? भक्ति है आपके पास? नहीं है। अगर भक्ति और प्यार रहा होता तो आपने अपने माँ-बाप की सेवा की होती। बहन-भाइयों की सेवा की होती। अपने बच्चों की सेवा की होती। नहीं, गुरुजी हमने तो की है। बेटे आप सेवा करना नहीं जानते। प्यार करना जानते ही नहीं हैं। आप तो एक ही बात जानते हैं—पैसा। बेटे को पैसा दे जा। अरे क्यों पड़ा हुआ है इन बच्चों के पीछे। इनका भविष्य खराब करने के लिए पैसा जमा करता चला

जा रहा है, क्या इनको शराबी बनाएगा, ऐयाश बनाएगा? दुराचारी बनाएगा? क्या बनाएगा? नहीं, महाराज जी मैं तो पैसा छोड़ करके जाऊँगा, बेटे को देकर के जाऊँगा और वह सारी की सारी जिंदगी मौज करेगा। बेटे वह मौज नहीं अपनी जिंदगी खराब करेगा और सबका सत्यानाश करेगा।

प्यार, मित्रो किसे कहते हैं, आप जानते नहीं हैं। प्यार एक ही चीज का नाम है, जिसमें आदमी को दिया जाता है। प्यार का अर्थ देना होता है। जिसको भी हम प्यार करते हैं उसको हम कुछ दिए बिना नहीं रह सकते। हम बच्चे को प्यार करेंगे तो उसको कुछ देंगे। जिस किसी को भी प्यार करेंगे उसको हम देंगे। भक्तियोग का अर्थ है—दया, भक्तियोग का अर्थ है—करुणा, भक्तियोग का अर्थ है—प्रेम, भक्तियोग का अर्थ है—सेवा। नहीं महाराज जी सेवा का अर्थ होता है—मूर्ति पर टन-टन घंटी बजा दी, बस हो गई नवधा भक्ति। तो यही है तेरी नवधा भक्ति-कौन सी—'**पाद सेवनम्**

पंखाझलनम्'—पाद सेवन और पंखा झलने को ही नवधा कहता है। जो बातें भक्ति की हैं उनसे तो हजारों मील दूर भागते रहते हैं और स्वांग करते रहते हैं, खेल-खिलौने बनाते रहते हैं। दंड-कमंडल पेलते हैं और भगवान को भी धोखा देते हैं और अपने को भी धोखा देते हैं और कहते हैं कि नवधा भक्ति करते हैं। बेटे, इसे नवधा भक्ति नहीं कहते।

मित्रो, क्या करना पड़ेगा? भक्तियोग के उस वास्तविक स्वरूप को समझना पड़ेगा जिसके लिए हमने आपको बताया था कि आप प्रकाश का ध्यान किया कीजिए। प्रकाश का ध्यान करेंगे तब फिर आपको वहाँ चलने का मौका मिल जाएगा, जहाँ कि **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** की बात बताई थी। एकाग्रता ध्यान का एक उद्देश्य है। बिखराव को रोकना भी कह सकते हैं, क्योंकि हमने अपने आप को सब जगह बिखेर दिया है। यदि हमने अपने आप को एक लक्ष्य पर केंद्रीभूत किया होता तो बंदूक की नली में से बारूद जिस तरीके से एक दिशा में चली

जाती है और लक्ष्य भेद करने में सफल होती है, हम भी अपने जीवनलक्ष्य में सफल हो गए होते। अर्जुन ने अपने बिखराव को एक केंद्र पर इकट्ठा कर लिया था। द्रौपदी-स्वयंवर में जब वह गया था तो द्रोणाचार्य ने लोगों से पूछा था कि क्या दिखाई पड़ता है? किसी ने कहा—मछली की पूँछ, तो किसी ने कहा—मछली की टाँग, मछली का पेट। तो आचार्य द्रोण ने कहा—आप मछली का निशाना नहीं बेध सकते, भागिए यहाँ से। फिर अर्जुन से पूछा कि आपको क्या दिखाई पड़ता है? अर्जुन ने कहा—हमें एक ही चीज दिखाई पड़ती है और वह है मछली की आँख। तो मारिए निशाना और सफलता का वरण कीजिए। मित्रो, असंख्य दिशाओं में फैला हुआ हमारा मस्तिष्क कभी सफलता नहीं पा सकता। इसे एक दिशा में इकट्ठा कीजिए।

यह ध्यान जो हम आपको बताते हैं—मेडिटेशन कराते हैं और कहते हैं कि अपने मन का बिखराव-फैलाव रोकिए। फैलाव के कारण न आपका विद्या

पढ़ने में मन लगता है, न स्वास्थ्य संवर्द्धन में कभी मन लगता है। हर समय बिखराव ही बिखराव। यह जो मन की अस्त-व्यस्त स्थिति है, इसको आप इकट्ठा कीजिए भगवान के माध्यम से, जप के माध्यम से, ध्यान के माध्यम से और प्रत्येक काम को जब करना हो तो इतना तीखा अभ्यास डालिए कि जब जो काम करना पड़े उसी में तन्मय हो जाएँ। सांसारिक कार्य में भी और भगवान के कार्य में भी। यह एकाग्रता अध्यात्मिकता का गुण है। आप जब भी जो भी काम करें उसमें इतने तन्मय हो जाएँ कि 'वर्क इन वर्क', 'प्ले इन प्ले' अर्थात जब आप खेलें तो इस कदर खेलें कि खेल के अतिरिक्त और कोई चीज ध्यान में ही न रहे और जब आप काम करें तो इस मुस्तैदी से काम करें कि काम के अलावा आपको कोई दूसरी चीज दिखाई ही न पड़े। इस तरह की तन्मयता के साथ किए गए काम सफलता के उच्च शिखर तक पहुँचा देते हैं। मित्रो, तन्मयता हमारे जीवन का वह वास्तविक स्वरूप होना चाहिए जो

वैज्ञानिकों के पास होता है। वैज्ञानिकों में और साधारण बी० एस-सी० में कोई विशेष फरक नहीं पड़ता, दोनों एक जैसे होते हैं। वैज्ञानिक उसे कहते हैं जो अपने रिसर्च कार्य में जब लगता है तो इतना गहरा डूबता हुआ चला जाता है जैसे मोती ढूँढ़ने के लिए पनडुब्बी सागर में गहराई तक चला जाता है और उसको बीन करके ले आता है। यह एकाग्रता का चमत्कार है। आपको एकाग्रता केवल भजन में ही नहीं लानी है, वरन हर काम में इसका अभ्यास करना है।

एकाग्रता का अभ्यास न होने के कारण ही सदैव यह शिकायत बनी रहती है कि गुरुजी हमारा मन भजन-पूजन में नहीं लगता। तो क्या किसी काम में आपकी एकाग्रता होती है ? हर काम में बिखराव है। आप अपने मन को निग्रहीत करना सीखिए। जब जो काम करना हो, तब उसमें इतनी मुस्तैदी से तन्मय होना सीखिए ताकि आप जब भजन करना शुरू करें तो भजन में भी उतनी तन्मयता हो जाए जितनी एक

योगी की होती है। यदि आपने प्रकाश का ध्यान करना सही तरीके से सीख लिया तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप वह सब कुछ प्राप्त कर सकेंगे जो एक अध्यात्मवादी को प्राप्त करना चाहिए।

ॐ शांतिः

ध्यानधारणा की दिव्य-शक्ति

ध्यान एक ऐसी विद्या है जिसकी आवश्यकता हमें लौकिक जीवन में भी पड़ती है और आध्यात्मिक अलौकिक क्षेत्र में भी उसका उपयोग किया जाता है। ध्यान को जितना सशक्त बनाया जा सके, उतना ही वह किसी भी क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। मनुष्य को जो कुछ प्राप्त है उसके ठीक-ठीक उपयोग तथा जो प्राप्त करना चाहिए, उसके प्रति प्रखरता, दोनों ही दिशाओं में ध्यान बहुत उपयोगी है। उपासना क्षेत्र में भी ध्यान की इन दोनों ही धाराओं का उपयोग किया जाता है। अपने स्वरूप और विभूतियों का बोध तथा अपने लक्ष्य की ओर

प्रखरता दोनों ही प्रयोजनों के लिए ध्यान का प्रयोग किया जाता है।

आध्यात्मिक ध्यान का उद्देश्य है, अपने स्वरूप और लक्ष्य की विस्मृति के कारण उत्पन्न वर्तमान विपन्नता से छुटकारा पाना। 'एक बच्चा घर से चला ननिहाल के लिए। रास्ते में मेला पड़ा और वह उसी में रम गया। वहाँ के दृश्यों में इतना रमा कि अपने घर तथा गंतव्य को ही नहीं, अपना पता भी भूल गया।' यह कथा बड़ी अटपटी लगती है, पर है पूरी तरह सच और वह हम सब पर लागू होती है। अपना नाम, पता, परिचय पत्र, टिकट आदि सब कुछ गँवा देने पर हम असमंजस भरी स्थिति में खड़े हैं कि आखिर हम हैं कौन? कहाँ से आए हैं और कहाँ जाना था? स्थिति विचित्र है, इसे न स्वीकार करते बनता है और न अस्वीकार करते। स्वीकार करना इसलिए कठिन है कि हम पागल नहीं, अच्छे-खासे समझदार हैं। सारे कारोबार चलाते हैं,फिर आत्मविस्मृत कहाँ हुए? अस्वीकार करना भी कठिन

है क्योंकि वस्तुत: हम ईश्वर के अंश हैं, महान मनुष्य जन्म के उपलब्धकर्त्ता हैं तथा परमात्मा को प्राप्त करने तक घोर अशांति की स्थिति में पड़े रहने की बात को भी जानते हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि जो होना चाहिए, वह नहीं हो रहा है और जो करना चाहिए वह कर भी नहीं रहे हैं। यही अंतर्द्वंद्व उभरकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में छाया रहता है और हमें निरंतर घोर अशांति अनुभव होती है।

जीवन का लक्ष्य पूर्णता प्राप्त करना है। यह पूर्णता ईश्वरीय स्तर की ही हो सकती है। आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए उस लक्ष्य पर ध्यान को एकाग्र करना आवश्यक है। महत्त्वपूर्ण इमारतें बनाने से पूर्व उनके नकशे, छापे एवं मॉडल बनाए जाते हैं। इंजीनियर, कारीगर उसी को देख-देखकर अपना निर्माण कार्य चलाते हैं और समयानुसार इमारत बनकर तैयार हो जाती है। भगवान का स्वरूप और गुण-कर्म-स्वभाव कैसा हो इसकी ध्यान प्रतिमा विनिर्मित की जाती है और फिर उसके साथ समीपता, एकता,

तादात्म्यता स्थापित करते हुए उसी स्तर का बनने के लिए प्रयत्न किया जाता है। ध्यान-प्रक्रिया का यही स्वरूप है।

असंतुलन को संतुलन में बदलने के लिए ध्यान-एकाग्रता के कुशल अभ्यास से बढ़कर और कोई अधिक उपयोगी उपाय हो ही नहीं सकता। कई बार मन क्रोध, शोक, कामुकता, प्रतिशोध, विक्षोभ जैसे उद्वेगों में बेतरह फँस जाता है और उस स्थिति में अपना या पराया कुछ भी अनर्थ हो सकता है। उद्विग्नताओं में घिरा हुआ मन कुछ समय में सनकी या विक्षिप्त स्तर का बन जाता है। सही निर्णय कर सकना और वस्तुस्थिति को समझ सकना उसके वश से बाहर की बात हो जाती है। इन विक्षोभों से मस्तिष्क को कैसे उबारा जाए और कैसे उसे संतुलित स्थिति में रहने का अभ्यस्त कराया जाए, इसका समाधान ध्यान साधना में जुड़ा हुआ है। मन को अमुक चिंतन प्रवाह से हटाकर अमुक दिशा में नियोजित करने की प्रक्रिया ही ध्यान

कहलाती है। इसका प्रारंभ भटकाव के स्वेच्छाचार से मन को हटाकर एक नियत निर्धारित दिशा में लगाने के अभ्यास से आरंभ होता है। इष्टदेव पर अथवा अमुक स्थिति पर मन को नियोजित कर देने का अभ्यास ही तो ध्यान में करना पड़ता है। मन पर अंकुश पाने, उसका प्रवाह रोकने में सफलता प्राप्त कर लेना ही ध्यान की सफलता है। यह स्थिति आने पर कामुकता, शोक संतप्तता, क्रोधांधता, आतुरता, ललक, लिप्सा जैसे आवेशों पर काबू पाया जा सकता है। मस्तिष्क को इन उद्वेगों से रोककर किसी उपयोगी चिंतन में मोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। कहते हैं कि अपने को वश में कर लेने वाला सारे संसार को वश में कर लेता है।

आत्मनियंत्रण की यह स्थिति प्राप्त करने में ध्यान साधना से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। इसका लाभ आत्मिक और भौतिक दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से मिलता है। अभीष्ट प्रयोजनों में पूरी तन्मयता, तत्परता नियोजित करने से ही किसी कार्य

का स्तर ऊँचा उठता है, सफलता का सही मार्ग मिलता है और बढ़ी-चढ़ी उपलब्धियाँ पाने का अवसर मिलता है। आत्मिक क्षेत्र में भी यही तन्मयता प्रसुप्त शक्तियों के जागरण से लेकर ईश्वरप्राप्ति तक का महत्त्वपूर्ण माध्यम बनती है।

ध्यानयोग का उद्देश्य अपनी मूलभूत स्थिति के बारे में, अपने स्वरूप के बारे में सोच-विचार कर सकने योग्य स्मृति को वापस लौटाना है। यदि किसी प्रकार वह वापस लौट सके तो लंबा सपना देखकर डरे हुए व्यक्ति जैसी अंत:स्थिति हुए बिना नहीं रह सकती। तब प्रतीत होगा कि मेले में खोए हुए बच्चे से,आत्मविस्मृत मानसिक रोगियों से अपनी स्थिति भिन्न नहीं रही है। इस व्यथा से ग्रसित लोग स्वयं घाटे में रहते हैं और अपने संबंधियों को दुखी करते हैं। हम आत्मबोध को खोकर भेड़ों के झुंड में रहने वाले सिंह की तरह दयनीय स्तर का जीवनयापन कर रहे हैं और अपनी माता परमसत्ता को कष्ट दे रहे हैं, रुष्ट कर रहे हैं।

विस्मरण का निवारण, आत्मबोध की भूमिका में जागरण, यही है ध्यानयोग का लक्ष्य। इसमें ईश्वर का स्मरण किया जाता है, अपने स्वरूप का भी अनुभव किया जाता है। जीव और ब्रह्म के मिलन की स्मृति फिर से ताजा की जाती है और यह अनुभव किया जाता है कि जिस दिव्यसत्ता से एक तरह से संबंधित विच्छेद कर रखा गया है, वही हमारी जननी और परम शुभचिंतक है। इतना ही नहीं वह कामधेनु की तरह सशक्त भी है कि उसका पयपान करके देवोपम स्तर का लाभ ले सकें। कल्पवृक्ष की छाया में बैठकर सब कुछ पाया जा सकता है, ईश्वरसत्ता से संपर्क, सान्निध्य, घनिष्ठता बना लेने के बाद भी ऐसा कुछ शेष नहीं रहता जिसे अभाव-दारिद्रय अथवा शोक-संताप कहा जा सके। ध्यानयोग हमें इसी लक्ष्य की पूर्ति में सहायता करता है। स्पष्ट है कि आत्मबोध से बढ़कर मानव जीवन का दूसरा लाभ नहीं हो सकता। भगवान बुद्ध को जिस वटवृक्ष के नीचे आत्मबोध हुआ था

उसकी डालियाँ काट-काटकर संसार भर में इस आशा से बड़ी श्रद्धापूर्वक आरोपित की गई थीं कि उसके नीचे बैठकर अन्य लोग भी आत्मबोध का लाभ प्राप्त कर सकेंगे और दूसरे बुद्ध बन सकेंगे। किसी स्थूल वृक्ष के नीचे बैठकर महान जागरण की स्थिति प्राप्त कर सकना कठिन है, पर ध्यानयोग के कल्पवृक्ष की छाया में सच्चे मन से बैठने वाला व्यक्ति आत्मबोध का लाभ ले सकता है और नर-पशु के स्तर से ऊँचा उठकर नर-नारायण के समकक्ष बन सकता है।

असंख्य विशेषताएँ और क्षमताएँ मानवी सत्ता के कण-कण में भरी पड़ी हैं। दसों इंद्रियाँ जादू की पिटारियाँ हैं। उन्हें रचनात्मक दिशा में नियोजित रखा जा सके, भटकाव से बिखराव से बचाया जा सके तो अभीष्ट सफलता की दिशा में द्रुतगति से बढ़ा जा सकता है। मन ग्यारहवीं इंद्रिय है। मस्तिष्कीय क्षमता का कोई अंत नहीं। उसके विचार-पक्ष और बुद्धि-पक्ष का ही थोड़ा सा प्रयोग होता है, शेष चित्त-अहंकार

वाला, अचेतन समझा जाने वाला, किंतु चेतन से लाखों गुना अधिक शक्तिशाली चित्त और अहंकार कहा जाने वाला भाग तो अविज्ञात स्थिति में निष्प्रयोजन ही पड़ा रहता है। अचेतन का अर्थ यहाँ अपेक्षित कहना ही उचित है। मन और बुद्धि वाले भाग का जितना प्रयोग किया जाता है उतना ही चित्त, अहंकार का भी प्रयोग होने लगे तो मनुष्य दुनियादार बुद्धिमानों की तुलना में असंख्य गुनी विचारशीलता, प्रज्ञा, भूमा प्राप्त कर सकता है और मात्र समझदार न रहकर तत्त्वद्रष्टा की स्थिति में पहुँच सकता है।

बिखराव को रोकने की, उपलब्ध शक्ति को संग्रहीत रखकर अभीष्ट प्रयोजन में प्रयुक्त कर सकने की कुशलता को आध्यात्मिक एकाग्रता कहते हैं। इस प्रयोग में प्रवीण होने पर मनुष्य अपनी बिखरी चेतना को एकत्रित करके किसी एक कार्य में लगा देने पर जादू जैसी सफलताएँ-उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकता है।

❐

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)